[श्री कानूनगो]

ने यह भी कहा कि जब कोचीन के बाजार का अनुभव प्राप्त हो जायेगा तब बम्बई नगर में द्वैधरक्षण की सुविधाओं के प्रश्न पर विचार किया जायगा । सरकार ने इन सिफारिशों को स्वीकार कर लिया और कोचीन में जनवरी, १९५७ से ही वायदा बाजार चल रहा है ।

अप्रैल, १९६० में आयोग ने बम्बई में फिर एक बाजार स्थापित करने के प्रश्न पर विचार किया । आयोग ने यह देखा कि वितरक केन्द्र के रूप में बम्बई का महत्व बहुत बढ़ गया है तथा अब शहर में गत ४/५ वर्षों की अपेक्षा दुगना माल आने लगा है ।

बम्बई के निर्यातक, देश के कुल निर्यात का ४० प्रतिशत भाग स्वयं करते हैं तथा यह पता चला है कि उन्हें कोचीन के बाजार से कोई लाभ प्राप्त नहीं होता । अब रूस तथा अन्य पूर्वी यूरोप के देश काली मिर्च के नये ग्राहक बने हैं । कोचीन में इतनी क्षमता नहीं कि इतने विदेशी आर्डरों को वहां से सम्हाला जा सके । इस कारण दूसरे बाजार की स्थापना आवश्यक थी । इसके साथ ही बाजार को व्यापक बनाने तथा जोखिम उठाने का सामर्थ्य बढ़ाने की भी आवश्यकता थी । बम्बई के बाजार से कोचीन के बाजार को भी स्थायित्व प्राप्त होगा क्योंकि कोचीन के व्यापारियों को अब अपनी जोखिम पूरी करने के लिये दूसरे बाजार से योग मिलेगा और वे ज्यादा बड़े आर्डर सम्हाल सकेंगे ।

इन तथ्यों की दृष्टि में सरकार वायदा बाजार आयोग के विचार स्वीकार करेगी तथा एक वर्ष के लिए प्रयोगात्मक आधार पर बम्बई में बाजार स्थापित करेगी अभी तक बम्बई में काली मिर्च में वायदे के सौदे करने के लिए किसी संस्था को मान्यता नहीं दी गयी है ।

†**श्री अ० क० गोपालन**: केरल में काली मिर्च के उत्पादकों पर एवं काली मिर्च के मूल्य के उतार-चढ़ाव पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ?

†**श्री कानूनगो** : वायदा बाजार आयोग ने अपनी सिफ़ारिशों में बताया है कि बम्बई में विपणन बनाने से काली मिर्च के मूल्यों के उतार-चढ़ाव में कमी आयेगी ।

निष्क्रांत हित (पृथक्करण) संशोधन विधेयक

†**अध्यक्ष महोदय** : अब सभा श्री मेहरचन्द खन्ना द्वारा २० अगस्त, १९६० को पेश किये निष्क्रांत हित (पृथक्करण) संशोधन विधेयक के विचार-प्रस्ताव पर चर्चा करेगी ।

†**पुनर्वास तथा अल्प संख्यक-कार्य मंत्री (श्री मेहर चन्द खन्ना)**: सदस्यगण तृतीय योजना के प्रारूप पर चर्चा करने के लिये अधिक उत्सुक हैं । इसके पहले उसके लिये जाने पर मुझे कोई आपत्ति नहीं ।

तृतीय पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा के प्रारूप के बारे में प्रस्ताव

†**प्रधान मंत्री तथा वैदेशिक-कार्य मंत्री (श्री जवाहरलाल नेहरू)** : मैं प्रस्ताव करता हूं :

> "कि तृतीय पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा के प्रारूप पर, जिसे १ अगस्त, १९६० को सभा-पटल पर रखा गया था, विचार किया जाये ।"

---

†मूल अंग्रेजी में

मुझे तो कुछ ऐसा लगा जैसे इस विचार-प्रस्ताव को पेश करना एक बहुत बड़ा काम था, एक बहुत भारी बोझ था, जिसे मैं अब तक अपने कंधों पर लिये था। हालांकि यह प्रारूप केवल एक रूपरेखा ही है लेकिन फिर भी इसमें भारत की सभी प्रगतिशील कार्यवाहियों की महत्वाकांक्षा का उल्लेख है, दरअसल इस में हमारे समूचे देश की तरक्की को लिया गया है। हमारी यह तीसरी योजना पिछली दूसरी योजना के साथ एक सिलसिले में जुड़ी हुई है यह योजना पिछली दूसरी योजना की एक आगे आने वाली शक्ल है। चीज़ इतनी बड़ी हैं कि इस पर बोलना, इसकी सभी बातों को लेना, काफी मुश्किल काम है।

सभी माननीय सदस्यों ने इसे पढ़ा होगा इसलिये इसके आंकड़ों की बात मैं नहीं करूंगा। मैं तो इस योजना की कुछ बड़ी अहम बातों के बारे में, इसे आगे चलाने की तरकीब के बारे में ही कहूंगा। फिर मैं चाहूंगा कि माननीय सदस्य इसके बारे में अपनी रायें बतायें।

यह सही है कि योजना आयोग ने इसे तैयार करने में काफी दिमाग लड़ाया है और इसके बारे में जनता के सभी वर्गों की राय ली है, और अपने देश के ही नहीं, देश के बाहर के भी बड़े-बड़े जानकारों, सलाहकारों की राय इस के बारे में ली है। लेकिन इतना सब हो चुकने के बाद भी हम ऐसा नहीं मानते कि अब इस में कोई रद्दोबदल नहीं की जा सकती।

हम में से कुछ लोगों में तो जरूर ही एक ऐसी भावना है कि अपने आदर्शों से डिगने का कोई सवाल ही नहीं उठता, उन पर सख्ती से जमे रहना है। इसलिये कि अपने आदर्श, अपनी मंजिल और अपने उसूल तो अपनी जगह बिल्कुल तय होने ही चाहियें। हां, यह दूसरी बात है कि दुनिया के हालात बदलने पर, उन में भी कुछ तब्दीली आ सकती है। जहां तक देश की तरक्की करने का, देश को खुशहाल बनाने का, जनता के रहन-सहन का दर्जा ऊंचा उठाने और समाजवादी ढॉचा बनाने का ताल्लुक है, हम कोई समझौता किसी के साथ नहीं कर सकते। हम अपने उन आदर्शों पर डटे रहेंगे, मजबूती के साथ। इस में तो ढिलाई का, या थोड़ी भी किसी रद्दोबदल का सवाल नहीं उठता। इसका मतलब यह भी नहीं कि मैं सदस्यों के न चाहने पर भी उन पर समाजवाद लादना चाहता हूं। जो लोग 'समाजवाद' शब्द को पसन्द ही नहीं करते, मैं उनकी बात नहीं करता। वे अपने बारे में खुद फैसला करें। मैं तो उनकी बात कह रहा हूं, जो मुझे अपना प्रतिनिधि मानते हैं। इस देश में हम समाजवाद लाना चाहते हैं। इसे कई ढंग से कहा जा सकता है। जो भी हो, लेकिन संक्षेप में हमारा आदर्श समाजवाद ही है। इसके बारे में शक की गुंजाइश नहीं रहनी चाहिये; इसलिये कि जब-तब कुछ लोग कहते हैं कि यह भड़कीला नारा सिर्फ दिखावे के लिये अपनाया गया है, जिसे हम कभी-कभी दूसरे नारों के साथ जोड़ भर देते है। बात यह है। चूंकि हम किसी एक खास किस्म या रंग के समाजवाद को अपनी मंजिल नहीं बनाये हैं, हम उसके आदर्श पर कठमुल्लों की तरह नहीं चलना चाहते, इसलिये हम बार-बार समाजवाद की रटन न लगा कर, सीधे-सीधे कह देते हैं कि हमें देश में क्या-क्या करना है; हम क्या-क्या करना चाहते हैं। वैसे सब मिलाकर वह है समाजवाद ही।

यह योजना असल में दूसरी योजना का ही एक बड़ा रूप है। दूसरी योजना पहली योजना की छोगुनी थी। यह तीसरी योजना, दूसरी से भी काफी बड़ी है। इसमें जो उद्देश्य बताये गये हैं, वे आपको दूसरी योजना में भी मिल जायेंगे। हम उनको जनता, देश और संसद के सामने लगातार पेश करते आये हैं।

हमारे उद्देश्य हैं; राष्ट्रीय आय में हर साल ५ फीसदी से ज्यादा की वृद्धि, खाद्यान्नों में आत्म-निर्भरता; उद्योगों और निर्यात के लिये कृषि उत्पादन बढ़ाना; इस्पात, ईंधन बिजली और मशीन

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

निर्माण—जैसे बुनियादी उद्योगों को और फैलाना; देश की जनशक्ति का उपयोग करना और रोजगार की सम्भावनायें बढ़ाना; आय और सम्पदा की असमानताओं को कम करना और आर्थिक शक्ति का अधिक समान वितरण करना। दूसरी योजना में भी इनका कुछ दूसरे शब्दों में उल्लेख था।

मैं तो समझता हूं कि एक मोटे तौर पर इन उद्देश्यों से सभी माननीय सदस्य सहमत होंगे। हां, इनको अमल में लाने के तरीकों के बारे में अलग अलग रायें हो सकती हैं। कुछ थोड़े से माननीय सदस्यों को छोड़ कर, बाकी सभी सदस्य योजना बनाने और उसके मुताबिक आगे बढ़ने के उसूल को, सिद्धान्त को मानते हैं। लेकिन यह समझ में नहीं आता कि जो लोग इस उसूल को नहीं मानते, वे पिछड़े हुए दिमागों के लोग हैं जो बात जनता को कैसे समझा सकेंगे। इसलिये कि योजना बनाने और उस पर चलने का काम अक्ल से ताल्लुक रखता है। योजना बनाना यही तो है कि किसी एक समस्या को हल करने के लिये सभी लोग मिल कर एक कोई रास्ता सोचते हैं। दूकानदार हो, या कारखानेदार या कोई राज्य,—योजना तो सभी को बनानी पड़ती है।

लेकिन अगर कोई अपनी आंखें बन्द ही रखना चाहें, तो उसका क्या इलाज। आज दुनिया का हर मुल्क, करीब-करीब हर मुल्क, मानता है योजना बना कर चलने के इस उसूल को। आज की दुनिया में हर चीज साइंस और तकनीक के बढ़ते हुए कदमों पर निर्भर करती है। साइंस और तकनीक के नये-नये नियमों के मुताबिक हर चीज को बदलना पड़ता है। ऐसे हालात में कोई भी ऐसी बात बड़ी अजीब लगती है जो कहे कि सभी चीजों को अपने मनमाने से चलने दो, जैसे कि निर्बाध व्यापार की बात है, यानी यह थ्योरी व्यापार पर कोई रोक टोक नहीं रहनी चाहिये। अब दुनिया में कोई भी इस थ्योरी को नहीं मानता, सिवा उन मुट्ठी भर लोगों के जो इसके जरिये जनता की मेहनत की कीमत पर खुद मुनाफा कमाना चाहते हैं। मेरा ख्याल है कि सभा का कोई भी माननीय सदस्य इस थ्योरी को नहीं मानेगा।

आज साइंस और तकनीक की नयी-नयी कामयाबियां मानव इतिहास के इस क्रान्तिकारी और को तेजी से बदलती जा रही हैं। हमें उनके मुताबिक ही सोचना और चलना पड़ेगा। दूसरी चीजें भी हैं, मैं मानता हूं। कई ऐसी चीजें भी हैं जिन तक अभी साइंस की पहुंच नहीं हो पाई है। कई ऐसी चीजें हैं, आत्मा या रूह से ताल्लुक रखने वाली नैतिकता या दुनिया में चलने के तौर-तरीकों से ताल्लुक रखने वाली, जिन तक तकनीक की पहुंच नहीं है। और यह बात भी है कि हमें उन चीजों को सबसे ज्यादा अहमियत देनी चाहिये। मैं उनको अनदेखा नहीं कर रहा हूं। लेकिन साइंस और तकनीक हमारी आज की जिन्दगी को तेजी से बदल रही हैं, और बदलती रहेंगी। वह तबदीली कभी अच्छी होगी, और कभी बुरी। साइंस और तकनीक ने आज हमें एक अजीब दौर में ला खड़ा किया है। एक तरफ तो कुछ देशों में साइंस और तकनीक के जोर से हर चीज की उपज और पैदावार, उत्पादन इतना बढ़ गया है कि वहां हर इन्सान की जिन्दगी की हर जरूरत को पूरा किया जा सकता है। लेकिन दूसरी तरफ ऐसे भी हालात पैदा हो गये हैं, ऐसी भी सम्भावना सामने है कि संसार की सभी अच्छी चीजें एक ही दिन में, एकाएक खाक में मिलाई जा सकती हैं।

ऐसी परिस्थिति में तो आज सबसे ज्यादा जरूरी हो जाता है कि हम एक योजना बना कर चलें, अपनी अक्ल से काम लें, सोचें कि हम अपने उद्देश्य को कैसे पूरा कर सकेंगे। इसलिये यह तीसरी योजना हमारे लिये कोई ऐसी एक किताब नहीं है जिसे हमें पढ़ना है। यह योजना तो हमारे इस विशाल देश की तस्वीर बन गई है, एक ऐसे देश की तस्वीर जो अपनी मंजिल तय कर रहा है, पहले से तय की हुई

दिशा में आगे बढ़ रहा है। हर योजना का एक उद्देश्य होता है, अभी हाल का और बहुत आगे का भी। जब कोई देश अपनी योजना बनाता है तो उसे कुछ बरसों की बात ही नहीं, आगे आने वाली कई पीढ़ियों की बात सोचनी पड़ती है। इसीलिये योजना बनाने का मतलब है कि आज की परिस्थितियों को वस्तुगत ढंग से, उनके सही रूप में देखने और उनका जायजा लेने के साथ ही आगे आने वाले जमाने की झांकी भी सामने रखी जाय। तभी आप मौजूदा जमाने और आगे आने वाले जमाने के लिये योजना बना सकते सकते हैं।

इसलिये, हमें देखना यह पड़ता है कि कौनसा कदम पहले उठाया जाये, कौनसा उसके बाद, और कौनसा उसके और भी बाद। हम अपने देश में हजारों काम करना चाहते हैं; लगन के साथ जल्द जल्द उनको पूरा कर लेना चाहते हैं। पर यह तो तय कर लेना पड़ेगा कि कौनसा काम पहला हो, और कौन से दूसरे या तीसरे चौथे हों। इसके बाद का सवाल है ससाधनों का, योजना पूरी करने के जरिये हासिल करने का। हमें देखना पड़ेगा कि अपनी मंजिल तक पहुंचने का क्या रास्ता है। सही रास्ता निकालने का काम सबसे अहम बन जाता है। इस्पात का एक कारखाना अगर आप खड़ा करना चाहे, तो उसके लिय सभी जरूरी चीजों को खरीदने के साथ ही, उसे चलाने वाले लोगों को काम सीखना पड़ता है। हमारा तजुर्बा यही है कि पश्चिमी देशों में जो भरी-पूरी सोसायटी, जो समृद्ध समाज बनाया है, वह साइंस और तकनीक की बुनियाद पर ही बनाया है। ऐसा समाज तभी बन पाया है जब उत्पादन और वितरण के तरीकों में, उसकी तकनीक में लगातार सुधार किय जाते रहे हैं और साथ ही उस तकनीकी काम को करने वाले लोगों को नये-नये तरीके सिखाये जाते रहे हैं। कृषि और उद्योग दोनों पर ही यह बात लागू होती है। आजकल की तकनीक कृषि और उद्योग दोनों के लिये है।

इसका यही मतलब है कि अगर हमें इससे काम को एक काफी अच्छे ढंग से अंजाम देना है, तो हमें अपने देश का सारा महौल, सारा वातावरण बलना पड़ेगा। हमें खतों और कारखानों—दोनों ही जगहों पर आधुनिक तकनीक को लागू करना पड़ेगा। मैं यह नहीं कहता कि हर आधुनिक तकनीक हमारे देश के लिय ठीक है और अपनाया जाना चाहिये। नहीं, हमें यह देखना पड़ेगा कि कौन-कौनसी आधुनिक तकनीक हमारे देश की परिस्थिति के विचार से हमारे लिय ठीक रहेगी। हमें उनको ही अपनाना है। लेकिन तकनीकें अपनाने के लिये उचित वातावरण पैदा करना बहुत जरूरी है। इसकी बड़ी अहमियत है। इसलिये कि कई लोग इस्पात के कारखाने खड़े करने या नयी तकनीक को अपनाने की बात तो बड़ी करते हैं, पर उनके दिमाग काम करने के पुराने तौरतरीकों के माहौल में ही बने। रहते हैं। हमें नया माहौल बनाना पड़ेगा, अपने कौमों को नयी तकनीक सिखानी पड़ेगी।

नयी तकनीकी तरक्की करके ही हम अपने देश में एक भरा-पूरा समृद्ध समाज बना सकेंगे। तकनीक की तरक्की का मतलब है लोगों को एक बड़े पैमाने पर तकनीक सिखाने के काम में आम तरक्की करना। यह काम एक-दो कारखाने खड़े करने तक महदूद नहीं। सवाल है आम जनता का दिमाग इस तरह का बना देना कि वह तकनीकी तब्दीली और तरक्की की बात सोच सके। समस्या यह है कि आम जनता को यह कैसे सिखाया जाय। इसके भी कई तरीके हैं। जो भी हों, आम जनता को शिक्षा देना सबसे जरूरी हो जाता है। जिन भी देशों में औद्योगिक क्रान्ति हुई है, उनको अपने यहां क्रान्ति से पहले मुफ्त लाज़िमी शिक्षा चालू करनी पड़ी है। सब लोगों ने उसे तब पसन्द नहीं किया, पर उन्हें करना पड़ा था। इसलिये कि आम जनता को पढ़ाये-लिखाये बिना औद्योगिककरण का ढांचा खड़ा ही नहीं किया जा सकता था। हैं

इसलिये हमें अपने देश को खेती और उद्योगों दोनों की दृष्टि से औद्योगीकृत बनाना पड़ेगा। हमें नयी नयी तकनीकें चालू करनी पड़ेगीं। लेकिन कैसे? इसका एक तरीका यह भी हो सकता है कि

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

हम दूसरे देशों से मशीनें खरीदें, तकनीकी तजुर्बा खरीदें और उनसे ही कहें कि हमारे यहां आकर उन मशीनों को लगा दें और उनको चला कर दिखायें भी वही। आम तौर पर उद्योगपतियों ने व्यक्तिगत रूप में यही किया है अब तक। लेकिन यह शुरुआत ही है औद्योगीकरण की, ठीक वैसे ही जैसे कि रेल-गाड़ी ने सौ साल पहले हमारे देश में एक तब्दीली की शुरुआत की थी, और जिसने आगे चल कर पूरे देश की तस्वीर बदल दी है। लेकिन इस तरीके को अपना कर हम तेजी से आगे नहीं बढ़ सकते। तेजी से आगे बढ़ने का एक ही तरीका है कि हम दूसरे देशों से मशीनें और तकनीकी जानकारी न खरीद कर, उनको खुद अपने ही देश में पैदा करें। इसके लिये सबसे अहम जरूरत इस बात की हो जाती है कि हम अपने देश में भारी उद्योग, मशीन बनाने वाला उद्योग खड़ा करें, और उससे औद्योगीकरण हो।

एक दलील यह दी गई है कि हमें अपने देश में भारी उद्योग खड़े करने पर नहीं, हल्के-फुल्के उद्योग खड़े करने पर ही जोर देना चाहिये। हल्के-फुल्के उद्योगों को भी खड़ा करना पड़ेगा, यह तो मैं मानता हूं। लेकिन भारी उद्योगों पर जोर दिये बिना देश का औद्योगीकरण करना मुमकिन नहीं। मशीनें तैयार करने वाले उद्योग पर जोर दिये बिना, औद्योगिक विकास के लिये जरूरी मशीनों को अपने ही देश में तैयार किये बिना औद्योगीकरण नहीं किया जा सकता।

मैं इस ग़लती को मानता हूं और पहले भी मैं ने यह स्वीकार किया है कि पहली पंचवर्षीय योजना में हम ने इस्पात का कारखाना शामिल नहीं किया था, और उस की वजह से हम काफी पिछड़ गये हैं। अगर हम तभी इतना बोझ उठाने की हिम्मत कर लेते तो यह दूसरी और इस तीसरी योजना के लिये बड़ा अच्छा रहता। इसीलिये हमें मजबूर हो कर दूसरी योजना में इस्पात के तीन नये कारखाने रखने पड़े। अब उन में से दो पूरे बन चुके हैं, और तीसरा भी पूरा होने को है। मशीनें बनाने के दूसरे कारखाने भी धीरे-धीरे खड़े होते जा रहे हैं।

अब अपने देश में औद्योगीकरण की शुरुआत साफ़-साफ़ दिखाई देने लगी है। अहमदाबाद, बम्बई या कानपुर में सूती कपड़े की छुटपुट मिलें खड़ी हो जाना तो औद्योगीकरण नहीं होता। सूती कपड़े की मिलें भी हमें चाहियें। ठीक है। लेकिन हम तो सूती कपड़े के कारखानों को ही औद्योगी-करण समझते हैं। औद्योगीकरण का हमारा विचार बड़ा ही संकुचित, सीमित और घिसापिटा है। असल में औद्योगीकरण का मतलब है चीज़ जो मशीनें, इस्पात, बिजली, वगैरह पैदा करे। यही तो औद्योगीकरण की बुनियाद है। एक बार अगर यह बुनियाद पड़ जाये, तो फिर उस पर ढांचा खड़ा करना बड़ा आसान होता है, खास तौर से हमारे जैसे पिछड़े हुए देश में। मैं नहीं कहता कि हमने बुनि-याद डालने का काम पूरा कर लिया है, लेकिन हमें काफी हद तक पूरा कर लिया है। और अब हम यकीनन कहीं ज्यादा तेजी से आगे बढ़ सकते हैं। छोटे-छोटे उद्योग खड़े कर के यह नहीं हो सकता था। यह बुनियाद डाले बिना तो हमें हमेशा ही विदेशों का मुहताज बने रहना पड़ता। सच है कि इस बात में हमें विदेशी मुद्रा के मामले में बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा है और आगे भी करना पड़ेगा। लेकिन अपने देश में भारी उद्योगों की बुयिनयाद डाले बिना तो हमें हमेशा ही यह कठिनाई बनी रहती। जाहिर है कि नींव डाले बिना किसी भी तीन-चार मंजिली इमारत को खड़ा नहीं किया जा सकता। भारी उद्योगों के बिना, छोटी-मोटी चीज़ों में तो तरक्की की जा सकती है, लेकिन उस से आम जनता की जिन्दगी पर कोई असर नहीं पड़ेगा। इसलिये हमारे जैसे देश की योजना के लिये सब से अहम बात औद्योगीकरण की ही है। इसीलिये हमारी इस योजना में बुनियादी उद्योगों को प्राथमिकता दी गई है। और, इसी से दूसरी चीजें पैदा होती चलती हैं।

औद्योगीकरण पर जोर देने के बाद, हाल ही, हमें महसूस होता है कि कृषीय उन्नति के बिना औद्योगिक उन्नति नहीं हो सकती। असल में दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। उद्योगों के बिना कृषि की भी उन्नति नहीं हो सकती। कृषि की उन्नति के लिये भी नये औजार और नई औद्योगिक तकनीक की जरूरत पड़ती है। दोनों एक दूसरे से गुथे हुए हैं। एक के बिना, दूसरे की उन्नति नामुमकिन है। हां, हम अपनी तरफ से कुछ प्राथमिकतायें निश्चित कर सकते हैं। सभी जानते हैं कि जब तक हम कृषि के मामले में आत्म-निर्भर नहीं बनते, तब तक उद्योगों की उन्नति भी असंभव है। यदि हम खाद्यान्नों का आयात ही करते रहेंगे, तो उद्योगों के लिये संसाधन नहीं जुटा सकते। खाद्यान्नों और मशीनों दोनों का आयात तो नहीं किया जा सकता। दोनों अपनी जगह महत्वपूर्ण हैं।

और, लाजिमी तौर पर इन दोनों के लिये सीखे हुए आदमी चाहियें। असल में अगर देखा जाये तो दुनिया की सभी मशीनें मिल कर भी कोई राष्ट्र पैदा नहीं कर सकतीं। राष्ट्र बनता है काम सीखे हुए लोगों से। काम सीखे हुए आदमी ही मशीनें तैयार करते हैं; मशीनें आदमी नहीं बनातीं। इसीलिये खास तौर पर तकनीकी ट्रेनिंग देने वाले आदमी और ऐसी संस्थायें हमें चाहियें। हम लोहा और इस्पात खाकर तो नहीं रह सकते। हमें अपनी जरूरत की चीजें तो पैदा करनी ही पड़ेंगी, और उस के लिये मझोले दर्जे के उद्योग भी खड़े करने पड़ेंगे। बड़ी खुशी की बात है कि बुनियादी उद्योगों पर जोर देने के बावजूद हमारे देश में छोटे और मझोले दर्जे के उद्योग भी काफी बढ़ रहे हैं। यह बड़ी महत्वपूर्ण चीज है।

अगर एक मोटे तौर पर आगे बढ़ने की इस नीति को, इस तरीके को सामने रखा जाये, तो फिर योजना की दूसरी सभी बातें उस की अलग-अलग मदों के ब्यौरे की रह जाती हैं। अब जैसे कृषि की बात लीजिये। मैं तो समझता हूं कि कृषि की उन्नति करने के तरीकों के बारे में आपस में कोई मतभेद नहीं है। लेकिन सवाल उसे अमल में लाने का है। सवाल यह है कि उन तरीकों को बड़े पैमाने पर ऊपर से लागू कर दिया जाये या किसानों को उन तरीकों को अपनाने के लिये राजी किया जाये और उन को अधिक अच्छे औज़ार, खाद और बीज दिये जायें। इस पर हम चर्चा कर सकते हैं, और करेंगे ही। लोग इस की खामियां बता सकते हैं। हम यह दावा नहीं करते कि इस में खामियां हैं ही नहीं। हम इसे पूरी विनम्रता से पेश कर रहे हैं। अभी तक के सोच विचार से हम ने इस को इसी तरह समझा है। ऐसे क्रान्तिकारी परिवर्तनों के युग में, इतनी बड़ी तब्दीलियों के जमाने में कोई भी ऐसा दावा नहीं कर सकता कि उस की योजना में कोई भी खामी नहीं है। इसीलिये अपनी भरसक कोशिश करके हम ने यह रास्ता निकाला है, और इस के बारे में दूसरों की हर राय सुनने के लिये हम तैयार हैं।

इस योजना में हम थोड़ी-बहुत रद्दोबदल तो कर सकते हैं। लेकिन उसका इस योजना पर कोई बड़ा असर नहीं पड़ेगा। मैं तो समझता हूं कि सभा के माननीय सदस्य और देश की अधिकांश जनता इस योजना की नीति और इस के ब्यौरे से सहमत है एक मोटे तौर पर। वे इस को अमल में लाने के तरीकों की आलोचना कर सकते हैं। कह सकते हैं कि सामुदायिक विकास योजना के अमल में कुछ खामियां हैं। वे कह सकते हैं कि कृषि पर इतना सारा खर्च करने के बाद भी उत्पादन क्यों नहीं बढ़ रहा है, या यह कि उद्योगों मे इतना विलम्ब क्यों हो रहा है। ऐसी आलोचना बिलकुल ठीक होगी। लेकिन ये आलोचना तो अमल की है। सिद्धान्त की दृष्टि से तो योजनायें ठीक हैं। हमारे देश के सामने सबसे अहम समस्या योजनाओं को अमल में लाने की है। बार-बार, नई-नई नीतियां बनाने और लम्बी-लम्बी तकरीरें देने से कोई फायदा नहीं है। जरूरत है अमल की। देश

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

के हर आदमी, बड़े या छोटे हर अफ़सर को, महसूस करना चाहिये कि अब सवाल अमल करने का है, लम्बी-चौड़ी हांकने का नहीं।

इसलिये नीतियां निर्धारित करना ही नहीं, उन पर किये जाने वाले अमल की जांच-पड़ताल करना भी महत्वपूर्ण है। हम सभा को बता चुके हैं कि हम ने इस के लिये १० करोड़ रुपये रखे थे, जिसमें से ६ करोड़ रुपये इस पर खर्च किये जा चुके हैं। कुछ माननीय सदस्यों ने पूछा है कि बाकी ४ करोड़ रुपये भी खर्च क्यों नहीं हुए ? लेकिन अहमियत इस बात की नहीं कि व्यय कितना किया गया, अहम सवाल तो यह है कि इतने रुपये खर्च करने से हासिल क्या हुआ ? यही है हमारे अपने अमल की जांच-पड़ताल। अब इस के लिये यह भी जरूरी हो जाता है कि काम करने वाले आदमी को जिम्मेदारी दी जाये। हम कई साल से कोशिशें कर रहे हैं कि जिम्मेदारी तमाम लोगों को सौंपी जाये, वह एक जगह, कुछ मुट्ठी भर लोगों तक सिमटी हुई न रहे। अभी भी वह चन्द लोगों के हाथों ही में है। जिम्मेदारी को इस तरह कुछ लोगों तक सीमित रखना गलत है। नये लोगों को जिम्मेदारी सौंप कर खतरा उठाना, कुछ नुकसान बर्दाश्त कर लेना कहीं अच्छा है। एक से दूसरे के पास नीचे से ऊपर फाइलें आने-जाने में बड़ा वक्त लगता है, हर बात में विलम्ब होता है। और यह विलम्ब ही सबसे ज्यादा नुकसानदेह चीज है हमारे लिये। हमें इस घेरे को तोड़ने में थोड़ी-बहुत सफलता भी मिली है। लेकिन जिम्मेदारी और फैलती जा रही है। हमें नये लोगों को कसौटी पर कस कर देखना चाहिये। नये लोगों को जिम्मेदारी दी जानी चाहिये। उस के बाद अगर वे खराबी पैदा करें तो उन्हें सजा दी जा सकती है ; और अगर अच्छा काम करें, तो उन की तारीफ़ की जा सकती है। लेकिन यह तो ठीक नहीं कि हर एक को हर बात का जिम्मेदार बता कर किसी एक को जिम्मेदार रहने ही न दिया जाये।

इस के अलावा एक और चीज भी है जिस का हमें अनुसरण करना है। हम यह कहते हैं कि पहली योजनाओं के दौरान में हम ने खासी सफलता प्राप्त की है चाहे उन की थोड़ी बहुत आलोचना भी की जाती है। यह ठीक है कि जैसा हम चाहते थे वैसा नहीं हुआ पर फिर भी सफलतायें सराहनीय हैं। परिवहन, संचार, इस्पात, ईंधन, बिजली, वैज्ञानिक तथा टेक्नोलाजिकल गवेषणा आदि क्षेत्रों में हम काफ़ी आगे बढ़े हैं। वस्तुतः भारतीय अर्थ व्यवस्था अब एक ऐसी अवस्था में पदार्पण कर चुकी है कि जहां से हम यदि कोशिश करते रहें और तेजी से आगे बढ़ सकते हैं। इस प्रकार के तौर से यदि हम अपने प्रयत्न कम कर दें तो न केवल हमारी प्रगति ही विलम्ब से होगी वरन् जो कुछ हमने अपने पहले परिश्रम से प्राप्त किया है उसका लाभ भी हम खो देंगे।

अनुमान है कि १९६१ में हमारी जन-संख्या १९५१ की अपेक्षा सात करोड़ और बढ़ जायगी। इस वृद्धि का कारण क्या है ? कारण यह है कि अब हम पहले से अधिक स्वस्थ हैं। पहले भारतीय की औसत आयु ३२ वर्ष थी किन्तु अब औसत आयु ४२ वर्ष की है। इसी से जनसंख्या में वृद्धि हुई है और निस्सन्देह जैसे जैसे हमारा राष्ट्रीय स्वास्थ्य अच्छा होता जायगा वैसे वैसे हमारी जनसंख्या बढ़ेगी।

यह भी बताया गया कि पहली दो योजनाओं में राष्ट्रीय आय में ४२ प्रतिशत तथा प्रति व्यक्ति आय में २० प्रतिशत की वृद्धि हुई। पर वह प्रश्न, जो उचित है, पूछा जाता है कि यह आय कहां गई। कुछ सीमा तक आप स्वयं भी देख सकते हैं। आंकड़ों के अतिरिक्त इसे वैसे भी देखा जा सकता है। मैं कभी कभी गांव में सभाओं में जाता हूं और देखता हूं कि अब वे ज्यादा अच्छा खाते हैं और पहनते

हैं। वे पक्के मकान बनाते हैं और उन की सामान्य स्थिति अच्छी है। किन्तु सब पर यह बात लागू नहीं होती। शायद कुछ लोगों को लाभ न भी पहुंचा हो। कुछ लोग तकलीफ़ झेल रहे होंगे। परन्तु यह तो सच है कि हमारी राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई है और प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ी है। मैं समझता हूं कि हमें इस बात पर और विचार करना चाहिये और विशेषज्ञों की एक समिति बनानी चाहिये जो यह पता लगाये कि हमारी बढ़ी हुई राष्ट्रीय आय किस प्रकार से फैली है।

कहने का अभिप्राय यह है कि हमें धन का दो चार हाथों में ही संग्रहीत होना रोकना है। यदि इस आय से देश के केवल ५ या ७ प्रतिशत लोग ही लाभान्वित हुए हों और ९० प्रतिशत जनता को कोई फायदा न पहुंचा हो तो यह अच्छा नहीं। हम यों तो इसे समान रूप से भी बांट नहीं सकते परन्तु लाभ तो सभी को प्राप्त होना चाहिए। वितरण को न्यायोचित रूप से करने के अनेक उपाय हैं। इसका वितरण समान नहीं किया जा सकता क्योंकि आदमी आदमी में भिन्नता है। एक आदमी दूसरे से ज्यादा परिश्रम करता है। एक राष्ट्र दूसरे से अधिक मेहनत करके आगे निकल जाता है। किन्तु बड़े दुख की बात है कि हम ने अभी तक परिश्रम के महत्व को नहीं समझा। हम परिश्रम तो कर सकते हैं परन्तु अभी तक हम ने इस का महत्व ठीक तरह से नहीं समझा। चाहे कोई भी देश हो वह परिश्रम से ही ऊपर उठता है। पूंजीवादी या समाजवादी या साम्यवादी देश परिश्रम से ही ऊपर उठते हैं। परन्तु भारत में यदि लोगों की छुट्टियां कम कर दी जाय तभी शिकायत होने लगती है। हालांकि यहां छुट्टियां दुनिया के हर देश से ज्यादा होती हैं। इसलिए न तो देश समान होते हैं न व्यक्ति। सब की मानसिक क्षमता, शारीरिक सामर्थ्य अलग अलग होता है। काम करने में भी फर्क होता है। तब भी सब को काम तथा प्रगति करने के लिए अवसरों की व्यवस्था करनी पड़ती है।

इसलिए स्थिति वातावरण पर निर्भर करती है। यह योजनाएँ वातावरण बनाने में महान योग दे रही हैं। परन्तु यह हमारा दुर्भाग्य है कि इस देश में—मैं संसद में किसी के बारे में उल्लेख नहीं कर रहा हूं—काम में रुकावटें डालने के सतत प्रयास किये जाते हैं और वातावरण को अंधकाराच्छन्न करने की कोशिश की जाती है ताकि लोग मेहनत न कर सकें। हो सकता है कि कई बार ऐसे प्रयत्न न्यायोचित भी रहते हों परन्तु मैं केवल इस समय यही कह रहा हूं कि इस देश में कुछ लोग बार बार, प्रत्यक्ष रूप से हर अच्छी चीज में बाधा डालते हैं। किन्तु मैं इस समय उन लोगों के बारे में नहीं कह रहा हूं बल्कि कह तो मैं उन लोगों के बारे में रहा हूं जो कि स्थानीय झमेलों में फंसे हैं; स्थानीय समस्याओं झगड़ों, प्रान्तवादिता तथा भाषा सम्बन्धी झगड़ों से ही कुछ लोग लिपटे हुए हैं और सांप्रदायिकता का प्रचार होता है। वे लोग बहुत छोटे हित को देखते हैं जो उन्हें शायद हितकर लगता हो पर वह हित राष्ट्रीय हित के मार्ग का रोड़ा है।

देखिये आसाम में क्या हो रहा है। यह महान दुखद घटना है परन्तु इससे भी अधिक दुख की बात है यह कि लोगों की ऐसी मनोवृत्ति बनती जा रही है। पंजाब में भी आंदोलन चल रहा है। मुझे यह देखकर बड़ी हैरानी होती है कि समझदार लोग भी इन में हिस्सा लेते हैं और ऐसे समय में जब कि हमारे सामने भारी समस्यायें हैं।

क्या हम इन समस्याओं का मुकाबला साहसिक व्यक्तियों की भांति करेंगे या फिर उन घटिया लोगों की तरह से जो केवल नारे ही लगा सकते हैं। हमें इस बात पर विचार करना चाहिए। यदि हम इसी तरह की नारेबाजी के आगे झुकते रहे तो उसका अर्थ यही होगा कि हम किसी भी चीज का मुकाबला साहस से नहीं कर सकेंगे। मैं इस समय किसी विशेष चीज का उल्लेख नहीं कर रहा और जहां तक वर्तमान सरकार का सम्बन्ध है वह इस तरह कभी झुक भी नहीं सकती।

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

किन्तु सभा को यह बात अनुभव करना चाहिए कि इस तरह की समस्यायें खड़ी करके जिनका महत्व दूसरे या तीसरे दर्जे का है, हम योजना के काम में कितना पीछे रह जाते हैं। आखिर यह समस्यायें बुनियादी महत्व की तो नहीं हैं। इस बात से ज्यादा फर्क पड़ने वाला नहीं यदि हमारी योजना में कुछ यहां पर हो और कुछ वहां पर। किन्तु वास्तविक महत्व तो वातावरण का है। यदि हमारी विचारधारा और हमारी शक्ति, स्थानीय झगड़ों या भाषा सम्बन्धी सांप्रदायिक समस्याओं में ही लग कर रह जाय तो हम प्रगति नहीं कर सकते; क्योंकि हमें इस बात को समझ लेना चाहिए कि तीसरी योजना के लिए अत्यधिक परिश्रम करने की आवश्यकता है।

यह कहना भी उपयुक्त नहीं कि हमें इतनी बड़ी योजना न बनाकर छोटी योजना बना लेनी चाहिए। वस्तुतः कुछ एक न्यूनतम उद्देश्य हमें पूरे करने ही हैं। हम उन्हें छोड़ नहीं सकते। पहले भी कुछ लोग यही कह कर आलोचना किया करते थे कि यह योजना महत्वाकांक्षाओं पर आधारित हैं। परन्तु अब कोई वैसा नहीं कहता। हालात और देश की आवश्यकताओं को देखते हुए हमें बड़ी योजना ही बनानी पड़ेगी। इस से हम छुटकारा नहीं पा सकते। पश्चिम के अत्यधिक सतर्क विचारक भी इसी नतीजे पर पहुचे हैं कि हमारी योजना बहुत विशाल नहीं है; अपितु कम ही है।

देश की प्रगति के दृष्टिकोण से हमारी योजना बड़ी भारी योजना नहीं पर हमारे साधनों को देखते हुए इसे विशाल योजना कहा जा सकता है। इसके लिए संसाधन उपलब्ध करने के हेतु हमें बहुत बड़ी कोशिशें भी करनी होंगी और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हमें परिश्रम करना होगा। यदि और ही प्रकार के झगड़े देश में उठते रहे तो स्वाभाविक रूप से योजना को क्षति पहुंचेगी।

यह कहा जा रहा है कि हमें कम से कम इतना तो कर ही लेना चाहिए कि हमारी राष्ट्रीय आय में आये वर्ष ५ या ६ प्रतिशत की वृद्धि होती रहे। यह वृद्धि ५ प्रतिशत से ऊपर तक की होनी चाहिए अन्यथा हमारा काम पीछे हो जायगा तथा विनियोजन में १४ प्रतिशत की वृद्धि होनी चाहिए। इसके लिए सामाजिक विकास की आवश्यकता है। औद्योगिक या कृषि विकास को समाज के विकास से अलग नहीं किया जा सकता। आजकल लोग यही समझते हैं कि लोहे का कारखाना ही योजना है और उसी से रुपया बनता है। हमें तो व्यक्ति का निर्माण करने की जरूरत है। यह सच है कि कुछ लोग, जिन में सामाजिक भावना लेशमात्र को भी नहीं होती, पया बनाने की कला में निपुण होते हैं और खूब धनोपार्जन करते हैं। यह सच है किन्तु समाज को हानि पहुंचा कर धनोपार्जन करना अच्छा काम नहीं; यह निन्दनीय कर्म है। समाज का विकास करने के लिये लोगों को अच्छा बनाना होगा।

आप शिक्षा के बारे में ही उदाहरण लीजिये। योजना में यह प्रस्ताव है कि ६ से ११ वर्ष तक के लड़के लड़कियों को निश्शुल्क अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाय। संविधान के अनुसार यह और भी ज्यादा होना चाहिए था। यह काम पहले दस वर्षों में ही हो जाना चाहिए था। अब तक तो १४ वर्ष तक के लड़के लड़कियों को निश्शुल्क शिक्षा दी जानी चाहिए थी। किन्तु हम इस को नहीं कर सके। यह असंभव था। तथापि शिक्षा का प्रसार काफी हुआ है।

कुछ लोगों ने यहां शिक्षा सम्बन्धी कामों की आलोचना की है और मैं समझता हूं कि उनका कहना किसी हद तक ठीक भी है। आज हर देश में इसी प्रकार की आलोचना चल रही है। हमारे स्कूलों में पूरा साजसामान नहीं और न ही अध्यापकों के वेतन ठीक हैं; उन में अनेक प्रशिक्षित भी नहीं हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में हम ने जो कोशिश की है वह निस्सदेह महान है।

इस समय भारत के स्कूल तथा कालेजों के छात्रों की कुल संख्या शायद ४५० लाख है। तीसरी योजना के अन्त तक लड़के लड़कियों की संख्या ६५० लाख हो जायगी। यदि हम उस काम को कर सके जिसे करना चाहते हैं तो अध्यापकों समेत विद्यार्थियों की संख्या १००० लाख हो जायगी। अर्थात् भारत की जनसंख्या का चौथा हिस्सा। आप तनिक इस समस्या की विशालता पर तो ध्यान दें। इस क्षेत्र में भी प्रगति तो आखिर करनी ही होगी।

हम इस प्रगति को फैलाना भी तो चाहते हैं। प्रादेशिक दृष्टि से यह काम आसान नहीं है। कुछ चीजें ऐसी है जो हर स्थान पर नहीं की जा सकतीं। जैसे लोहे के कारखाने हर जगह नहीं लगाये जा सकते। वहां और किसी प्रकार के उद्योग धंधे चालू किये जा सकते हैं। किन्तु हमें हर गांव को कुछ न्यूनतम सुविधायें तो देनी ही चाहिएं जैसे कि अन्न, जल, वस्त्र, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवासन इत्यादि की सुविधाएं। हमें इस प्रकार से पूंजी लगानी चाहिए जिससे कि यह उद्देश्य पूरे हो सकें। यह प्रश्न भी बार बार उठाया जाता है कि सरकार समाजवाद की बातें तो करती है पर असमानताओं को बने रहने दे रही है और एक ओर भूमि पर अधिकतम सीमा निर्धारित कर रही है पर शहरी आय पर ऐसी कोई रोक नहीं लगा रही। मैं मानता हूं कि यहां पर विरोधाभास है। परन्तु यदि हम इस विरोध को मिटा दें तो हम इस प्रकार से प्रगति नहीं कर पायेंगे जिस तरह से हम चाहते हैं। आप इस तरह से औद्योगिक प्रगति नहीं कर सकते तब तक जब तक कि आप समाज का समूचा ढांचा ही बदलने को तैयार न हों। हां समाज का सम्पूर्ण ढांचा बदल डालना दूसरी बात है। यदि आप सामाजिक ढांचे को एकदम बदलना नहीं चाहते तो जनता की प्रेरणा के लिए कुछ सीमा तक आप को कुछ चीजों का अवकाश देना होगा। कुछ कार्यों में लोगों को रियायतें भी देनी होंगी। वैसे भी कर लगा कर आप असमानताओं को समाप्त कर सकते हैं और दूसरे तरीके भी हैं। किन्तु नगरीय आय की सीमा निश्चित करने से प्रगति की गति धीमी पड़ जायगी। हमारे लिये सब से जरूरी चीज़ यह है कि प्रगति की रफ्तार कम नहीं होनी चाहिए। आखिर वितरण से पहले उत्पादन ही का तो महत्व है। गरीबी के वितरण से क्या लाभ होगा।

सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्र की भी काफी चर्चा है। जो लोग समाजवादी हैं वे तो यही चाहते हैं कि सरकारी क्षेत्र ही सदा फलता फूलता रहे। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि बाद में गैर-सरकारी क्षेत्र को समाप्त ही कर दिया जायगा। मुझे इसके बारे में कुछ नहीं पता। मैं कोई पैगम्बर नहीं हूं कि अभी से बता सकूं कि बीस तीस वर्ष बाद क्या होगा। किन्तु मैं समझता हूं कि गैर-सरकारी क्षेत्र अपना काम करेगा पर सीमित ढंग से। यह नहीं होगा कि हर छोटी दुकान सरकार की होगी। यह भी आवश्यक नहीं कि हर खेत सरकार की मिलकियत हो। किन्तु मुझे कुछ ज्ञान नहीं—परन्तु ये सब बातें सिद्धान्तों पर नहीं वरन् वैज्ञानिक तथा टेक्नालॉजिकल प्रगति पर निर्भर करती हैं।

हमारे में से बहुत से लोग सैद्धान्तिक प्रगति तथा समस्याओं के सैद्धान्तिक हल की बात सोचा करते हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि अब विज्ञान इतनी प्रगति कर चुका है कि सब सिद्धान्त उस दष्टि से पुराने पड़ गये हैं और उनमें संशोधन की आवश्यकता है।

मेरा विचार है कि सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्र के बारे में बुनियादी तौर पर दो मापदंड होने चाहिएं। पहली बात तो यह है कि जिस तरह से भी हो सके हम उत्पादन को बढ़ायें और दूसरी यह कि धन कुछ एक लोगों के हाथों में ही संग्रहीत न होने पावे। यदि हम पहली बात

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

पर ही चलें तो उसके परिणाम भयंकर होगा। समाज को इससे भारी क्षति पहुंचेगी। इसलिये हमें शुरू से ही यह उद्देश्य ले कर चलना चाहिए कि धन का संचय कुछ एक व्यक्तियों के ही हाथों में न होने पावे। इस बात की हमें चिन्ता नहीं कि गैर-सरकारी क्षेत्र कितना फैलता है। मैं चाहता हूं यह फैले और बढ़े परन्तु इसका एकाधिपत्य न बने। हमारे संविधान में भी तो इसी प्रकार की व्यवस्था की गयी है। संविधान में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि धनसंग्रह तथा एकाधिपत्य नहीं होने चाहिएं।

यह सब व्यवस्था तो की जा सकती है परन्तु रेखा खींचना तनिक कठिन है। हर मामले पर उसी के गुणावगुणों के आधार पर विचार किया जाना चाहिये। ये दो बातें हरेक को याद रखनी चाहियें। यदि हमारी किसी कार्यवाही से उत्पादन में ही कमी आ जाय तो हम तो अपनी प्रगति के पांव पर स्वयं कुल्हाड़ा मार रहे हैं। यदि इसी प्रकार इस अधिपत्यों को विकसित होने दें तो हम एक ऐसी चीज को प्रोत्साहन दे रहे होंगे जो कभी भी हमारे मार्ग में चट्टान की तरह रुकावट पैदा कर देगी। निस्सन्देह इस प्रकार हम समाजवाद के उद्देश्य से बहुत परे भटक जायेंगे।

अतः हमें उत्पादन की वृद्धि करनी चाहिये और इसी के साथ साथ सामाजिक तत्वों का विकास भी होना चाहिये। यदि कोई यह कहता हैं कि प्रेरणा उत्पादन के लिये अत्यावश्यक है तो मैं उस की बात मान लेता हूं। किन्तु प्रेरणा भी तो कई प्रकार की होती है। प्रेरणा समाज के लिये उपयोगी भी होती है तथा हानिकारक भी। हो सकता है कि हम समाज के लिये हानिकारक प्रेरणाओं को एक दम से दूर न कर सकें। परन्तु हमें उसे दूर करना ही चाहियें क्योंकि बात यह है कि वे समाज, जिन में एक को हानि पहुंचा कर दूसरा लाभ प्राप्त करे अब बीते युग के समाज हो गये हैं। आजकल समष्टि का युग आरम्भ हो रहा है और हम यह कदापि नहीं चाहते कि भारत में लोगों की अर्जनात्मक प्रवृत्ति एक खास सीमा से आगे बढ़े; एक खास सीमा तक की ऐसी प्रवृत्ति तो सामान्यतया हम सभी के जीवन में पाई जाती है। किन्तु हमारी सामाजिक नीति ऐसी नहीं होनी चाहिये जो अर्जनात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करे। यदि आप इस बात पर ध्यान दें तो आप देखेंगे कि बहुत से काम अर्थात् सट्टेबाजी आदि के काम राष्ट्रीय दृष्टिकोण से बुरे हैं और सामाजिक विकास के लिये हानिकारक हैं। दर असल हम पर अनेक आवरण चढ़े हुए हैं और हम उन सब को एकाएक उतार कर नहीं फैंक सकते। परन्तु यह हमें सदा समझना चाहिये कि इस प्रकार का तरीका बुरा है।

सारी बात संसाधनों पर निर्भर करती है अर्थात् इस बात पर कि कितने साधन हम देश में से जुटा सकते हैं और कितनी सहायता प्राप्त कर सकते हैं। तीसरी योजना का मुख्य उद्देश्य यह है कि हमारे देश की आर्थिक स्थिति इस सीमा पर पहुंच जाय कि हमें बाहर से किसी प्रकार की सहायता न लेनी पड़े; वित्तीय सहायता या यंत्रों की सहायता भी न लेनी पड़े। इसी अवस्था को ऊर्ध्वगामी अवस्था का नाम दिया जाता है। किन्तु इस अवस्था में बाह्य सहायता पर निर्भर करना ही पड़ेगा चाहे वह सहायता यंत्रों के रूप में या धन के रूप में; ऋण हों या अग्रिम। सिद्धान्ततः हम बाह्य सहायता के बिना काम चला लें परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से उस के बिना हमारा काम बड़ा ही कठिन हो जायगा। मामला बहुत ही लम्बा खिंच जायगा और हो सकता है कि उस अर्से में ऐसी ऐसी बात हो जाय जिन की हम कभी कल्पना भी नहीं कर सकते।

अतः हमारे देश जैसे हर देश को जो औद्योगिक प्रगति में जुटा हुआ हो, बाह्य सहायता का सहारा लेना पड़ता है। हर देश ने ऐसा किया है। यूरोप तथा अमरीका के देशों ने भी ऐसा किया है। मैं यह नहीं बता सकता कि हमें कितनी विदेशी सहायता उपलब्ध हो जायेगी। जिन देशों ने

हमारी सहायता की है हम उन्हें धन्यवाद देते हैं । अधिकांश सहायता हमें अमेरिका से मिली है; रूस ने भी काफी सहायता हमें दी है और अन्य देशों ने भी हमारी सहायता की है । उन्होंने उदारता से काम लिया है । मैं यह शिकायत नहीं करता कि कभी कभी जो ऋण उन्हों ने हमें दिये वे हमारी आशा से कम दिये क्योंकि वस्तुतः हमारी आशायें भी अस्पष्ट सी हैं और वस्तुतः हम चाहते भी ऋण ही हैं; दान या खैरात हमें नहीं चाहिये ।

मैं केवल इतना कह सकता हूं कि सहायता पाने की संभावनायें काफी है और हमें सहायता मिलेगी । किन्तु दूसरी चीज जिसे हम प्राप्त नहीं कर सकते वह है हमारे अपने देश के आभ्यांतरिक साधन । हम लोगों पर काफी बोझ पड़ने वाला है । इससे बचना कठिन है । हमें इस का मुकाबला करना होगा । चाहे हम पर भारी कर लगें, या जनता को ऋण देना पड़े या बचत करनी पड़े हमें सहनी होंगी ये सारी बातें ।

इन सब बातों में मूल्य सम्बन्धी नीति का प्रश्न उठता है । यह बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है और साथ ही कठिन भी है । वस्तुतः यह योजना कोई दलगत काम नहीं है ; आप अधिकाधिक इतना ही कह सकते हैं कि कांग्रेस समाजवादी बनाने पर तुली हुई हैं । अन्यथा हमारा उद्देश्य काफी व्यापक है और उस की व्यापकता के अन्तर्गत सभी दलों की बातें आ जाती हैं । मूल्य नीति के बारे में भी विभिन्न मत हो सकते हैं । किन्तु दलगत विभिन्नतायें तो शायद इस सम्बन्ध में नहीं हैं ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि मूल्यों पर नियंत्रण रखना बड़ा जरूरी है । यह भी सच है कि विकासोन्मुख आर्थिक व्यवस्था में मुद्रास्फीति भी होती हैं; वस्तुतः सीमित मुद्रास्फीति तो अच्छी होती है क्योंकि यह खुद ही विकास की निशानी है । हमें इस से डरना नहीं चाहिये । किन्तु यदि यह एक सीमा से आगे बढ़ जाये तो स्पष्टतया यह हानिकारक होती है । और फिर यह सब कुछ जनता की अनिवार्य आवश्यकताओं से सम्बन्धित वस्तुओं पर निर्भर है । यदि मुद्रास्फीति तथा मूल्यों की वृद्धि सीमा से अधिक हो जाय तो यह सारी व्यवस्था के लिये ही हानिकारक होती है । इसी कारण मूल्य सम्बन्धी नीति निर्धारित करने का प्रश्न उठता है । इस समय मैं कोई स्पष्ट मूल्य नीति का प्रतिपादन करने नहीं जा रहा इस पर भी विचार होगा और मुझे आशा है कि यह चीज़ इस सभा के समक्ष विभिन्न तरीकों से आती रहेगी । मूल्य नीति आर्थिक क्रियाकलाप से अलग कोई चीज नहीं है । आप इसे वित्तीय, वाणिज्यिक या अन्य प्रकार के विनियोजन से पृथक नहीं कर सकते . . . .इस में नियंत्रणों का प्रश्न भी आ जाता है । चाहे हम इन चीजों को चाहें या न चाहें हमें इन का मुकाबला करना होगा । वास्तव में हमारे यहां नियंत्रण थें; ऐसी बात नहीं कि नियंत्रण थे ही नहीं । हो सकता है कि कुछ अनिवार्य चीजों पर आवश्यकता पड़ने पर नियंत्रण किया जाय . . . मेरे कहने का तात्पर्य है कि नियंत्रण का उपाय भी किया जा सकता है । किन किन चीजों पर ऐसा होना चाहिये यह अलग चीज है जिस पर पृथक विचार होना चाहिये ।

यदि विलास वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो तो कोई फर्क नहीं पड़ता परन्तु अनिवार्य वस्तुओं के मूल्यों की वृद्धि से अवश्य अन्तर पड़ता है । इसलिये मूल्य नियंत्रण का सम्बन्ध अनिवार्य वस्तुओं के मूल्यों से ही है । इस का मतलब यह है कि यदि हम कोई कार्यवाही करेंगे तो कुछ गिनी चुनी वस्तुओं के बारे में यह कार्यवाही की जायेगी ।

जहां तक घाटे की बजट व्यवस्था का सम्बन्ध है, यह कोई बुरी चीज़ नहीं बशर्ते कि इस पर पूरा नियंत्रण रखा जाय । इसी कारण इस समय इस चीज़ पर नियंत्रण रखने की बड़ी आवश्यकता है । हो सकता है कि बाद में हम थोड़ा सस्ता लें ।

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

अब मैं सामुदायिक विकास के बारे में कुछ शब्द कहूंगा। मैं इस काम को बहुत महत्व देता हूं। मैं ने इस की सराहना की है ; काम की सराहना नहीं बल्कि इस के उद्देश्यों की। यद्यपि हम से इस काम में काफी गलतियां हुई है तथापि निस्सन्देह, इस कार्यक्रम से भारतीय ग्राम्य जीवन में नई चेतना का प्रस्फुटन होता जा रहा है। भारत के किसानों में नई भावना फूंकने के लिये यह कार्यक्रम, कारखानों की स्थापना की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। पंचायतों को जो अब अधिक अधिकार देने का काम शुरू किया गया है वह पंचायत राज की स्थापना की दिशा में काफी महत्वपूर्ण है। इस से बुनियादी तौर पर क्रान्तिकारी परिवर्तन होंगे। मैं चाहता हूं कि माननीय सदस्य इस काम की पूरी सराहना करें क्योंकि कृषि उत्पादन सम्बन्धी कार्य के लिये यह कार्यक्रम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अन्त-तोगत्वा इस से किसान ऊंचा उठता है।

यहां पर पुनः सहकारी संस्थाओं का प्रश्न उठता है। पता नहीं किस कारण से कुछ लोग "सहकारी" शब्द से भयभीत हो जाते हैं। मैं ने इस बात को समझने का प्रयास किया है। मैं सदा दूसरे का दृष्टिकोण समझने का प्रयत्न किया करता हूं और सफलता भी मुझे उस में मिल जाती है। इसी कारण लोग मुझे यह दोष देते हैं कि मैं चीजों को दोनों दृष्टिकोणों से देखता हूं। यह सच है। मैं ने उन लोगों का दृष्टिकोण समझने की भरसक कोशिश की हैं जो अचानक सहकारी संस्थाओं का विरोध करने लग गये हैं। जब कभी सहकारी खेती का उल्लेख किया जाता है तो उन लोगों की पीड़ा और भी तीव्र हो जाती है। परन्तु मैं प्रयत्न करने के बावजूद भी इस का कारण नहीं समझ सका। दुनिया भर के सारे बुद्धिमान लोग इस चीज को मानते हैं। किन्तु निहित स्वार्थ इतने विशाल हैं तथा सीमित मनःस्थिति इतनी सीमित है कि उस के कारण लोगों को सामने खड़ा तथ्य भी नहीं दीख पड़ता। भारत में खेती के लिये केवल सहकारिता ही सर्वोत्तम है। दूसरा कोई भी तरीका नहीं है। मेरा ही यह मत नहीं बल्कि जिस किसी ने भी भारतीय कृषि का अध्ययन किया है उसी ने यह बात कही है और यह बात पिछली पीढ़ी से कही जाती रही है।

आप हर तरीके से इसे देख परख लें ; हर बुद्धिमान व्यक्ति ही आप को यह बतायेगा कि केवल यही तरीका सही है। किन्तु हर एक मामले में वह सही तरीका नहीं भी हो सकता। जमीन की हालत आदि बातों पर भी विचार करना होता है। जहां खेत काफी बड़े बड़े हों, वहां यह तरीका आवश्यक नहीं है। वह अलग बात है। जिस के पास १०० या २०० एकड़ भूमि है उस के लिये यह तरीका जरूरी नहीं है किन्तु भारत में खेत छोटे हैं और इस कारण इस तरीके के अलावा और कोई दूसरा उपाय नहीं है।

कहा जाता है कि इस से देश में साम्यवाद की स्थापना होने की आशंका है। जो लोग इस तरह से आंतकित हैं उन के साथ दलील से बात करना ही बेकार हैं। साम्यवाद का इस चीज से कोई संबंध नहीं है। यह बड़ी विचित्र बात है कि हम इस तरह की बातों को आपस में मिला दें। हां यदि आप यह कहें कि सरकार किसी को मजबूर कर के सहकारी खेती में शामिल न करे ; मैं इस बात को मान सकता हूं। किन्तु आप को स्मरण रखना चाहिये कि एक राज्य में हजारों चीजें ऐसी होती हैं जिन्हें विवशता से भी कराना पड़ता है। आप को सड़क के बाईं ओर चलाया जाता हैं आप दाईं ओर नहीं चल सकते। संगठित राज्य में अनेक नियम तथा विनियम होते हैं जिन का आप को पालन करना पड़ता है अन्यथा आप को दंड भुगतना पड़ता है। किन्तु जहां तक इस मामले का सम्बन्ध है मैं मजबूरी में विश्वास नहीं रखता ; क्योंकि इस चीज के कुछ सामाजिक पहलू भी हैं ; वैसे भी मैं जहां तक संभव हो, किसी को विवश कर के कोई काम कराने में विश्वास नहीं रखता। किन्तु मिल कर खेती करने

या सहकारी खेती करने का विचार कृषि सम्बन्धी काफी ऊंचा विचार हैं ठीक वैसे ही जैसे उद्योगों में सामाजिक उन्नति के विचार चल रहे हैं। बहरहाल अर्जनात्मक प्रवृत्ति की अपेक्षा सामाजिक प्रवृत्ति ज्यादा अच्छी है। निस्सन्देह आप यह भी कह सकते हैं कि भारतीय जनता इस प्रयोजन के लिये इतनी अच्छी नहीं है इस कारण हम इस काम को नहीं कर सकते। किन्तु जनता को सुधारना चाहिये। कुछ भी हो हमारे ग्राम्य जीवन के विकास के लिये सहकारी खेती बहुत आवश्यक चीज है। इस समय हम सहकारी खेती पर जोर भी नहीं दे रहे। इस समय हम केवल सेवा सहकारी संस्थाओं पर ही जोर दे रहे हैं और जहां लोग ऐसा करना चाहें वहां मिलजुल कर वे खेती भी कर सकते हैं। जो लोग ऐसा करना चाहते हैं हम उन के मार्ग में बाधा नहीं डालते। हम उन्हें प्रोत्साहन देते हैं। हमें ऐसा करना भी चाहिये क्योंकि हम समझते हैं कि यह अत्यावश्यक चीज है।

मैं यह भी कहना चाहूंगा कि हमारे राज्यों में भूमि सुधार सम्बन्धी कामों में विलम्ब हुआ है। यह विलम्ब हमारे लिये तथा उत्पादन के लिये सामान्य रूप से हानिकारक है। किन्तु यह तो सौभाग्य की बात है कि हम भूमि सुधार सम्बन्धी कामों का पहला दौर समाप्त कर रहे हैं।

अन्त में मैं यह बात दोहराऊंगा कि हमारी सरकार तथा योजना आयोग दोनों यह नहीं समझते कि सारी बुद्धिमत्ता उन्हीं के पास है। किन्तु उन्होंने काफी सोच विचार के बाद यह चीज तैयार की है और वे इसे देश के हित में समझते है उनकी इच्छा है कि लोग इस पर विचार करें तथा अपना दिमाग लगा कर अच्छे सुझाव दें क्योंकि अच्छे सुझावों से अच्छी योजना तैयार की जा सकती है और इसे अन्तिम रूप देने से पूर्व सुधारा जा सकता है। मैं फिर यह बात कहूंगा कि आज की दुनिया में हम एकाकी जीवन नहीं बिता रहे हैं। यह दुनिया बड़ी तेजी से बदलती जा रही है देखिये अफ्रीका आदि देशों में क्या हो रहा है। इन सब बातों से दुनिया पर प्रभाव पड़ता है। हमें अब धीमी गति से चलना नहीं चाहिए। मैं सीमान्त की समस्या का उल्लेख नहीं कर रहा हूं। वे समस्यायें तो हैं ही किन्तु विश्व में भी अनेक समस्यायें उपस्थित हो रही हैं और हमें अपनी समस्याओं पर उस संदर्भ में दृष्टि डालनी चाहिए।

†अध्यक्ष महोदय : प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ।

प्रस्ताव पर निम्नलिखित स्थानापन्न प्रस्ताव प्रस्तुत हुए

स्थापन्न प्रस्ताव संख्या	प्रस्तावक का नाम	संक्षिप्त विषय
१	श्री रंगा .	(क) उत्पादन के प्रति अनुमानों और लक्ष्यों के कारण यह योजना अव्यवहारिक और भ्रांति पूर्ण हैं।
		(ख) संसाधनों और व्यय में भारी अन्तर के कारण पुनः घाटे की अर्थव्यवस्था करने और अतिरिक्त कर लगाने की संभावनाओं के कारण मुद्रास्फीति की वृद्धि होगी।
		(ग) विदेशी सहायता पर बहुत अधिक निर्भर रहना होगा जिसके फलस्वरूप देश का भविष्य रहन हो जाने की संभावना है।

†मूल अंग्रेजी में